महाभारत में शिवतत्त्व

महाभारत एवं रामायण हिन्दू धर्म एवं संस्कृति के मूल ग्रन्थ माने जाते हैं। ये दोनों ही ग्रन्थ जन-सामान्य में अत्यन्त प्रचलित हैं। रामायण की तुलना में महाभारत बहुत ही वृहद ग्रन्थ है। इसके लेखक वेदव्यासजी माने जाते हैं। इस ग्रन्थ को विद्वान् लोग पंचम वेद भी कहते हैं। ऐसा कहने का एक कारण यह है कि ऐसे हिन्दू पौराणिकतत्त्व जो महाभारत में नहीं हैं वे कहीं भी नहीं हैं। दूसरे शब्दों में महाभारत को एक तरह से हिन्दू धर्म, सभ्यता एवं संस्कृति का विश्वकोष कह सकते हैं। इसके अन्दर सभी प्रकार के पौराणिक आख्यान, दार्शनिक सिद्धान्त, धर्मशास्त्र के नियम तथा धार्मिक मान्यतायें मिलती हैं। अत: इस ग्रन्थ को ज्ञान का भंडार कहा जा सकता है।

इस ग्रन्थ के दो तरह के पाठ प्रचलित हैं। पहला पाठ दाक्षिणात्य तथा दूसरा उत्तर भारतीय कहा जाता है। प्रस्तुत लेख मूलत: उत्तर भारतीय पाठ, जिसे गीताप्रेस, गोरखपुर ने प्रकाशित किया है, पर आधारित है। इस प्रकाशन में बीच-बीच में दक्षिण-भारतीय पाठ के उपयोगी अंश भी दिये गये हैं। महाभारत में भगवान् शिव की महिमा संबंधी बहुत सी बातें विस्तार के साथ प्राप्त होती हैं। इस निबंध में हम मात्र उन बातों का सारांश ही प्रस्तुत कर पायेंगे। शिवमहिमा संबंधी कुछ महत्त्वपूर्ण अंशों को हम अलग से(मूलग्रन्थ से यथावत् लेकर) इसी पुस्तक में अन्यत्र प्रस्तुत करेंगे।

भगवान् शिव का स्वरूप

भारतीय दर्शन में परमतत्त्व जिसे एक, सबका कारण, निर्गुण, अनिर्वचनीय, अज्ञेय, अनादि तथा अनन्त कहा जाता है, उसे ब्रह्म कहते हैं। इस ब्रह्म के दो रूप हैं- निर्गुण एवं सगुण अथवा पर एवं अपर। निर्गुणरूप में ब्रह्म को अनिर्वचनीय, मन, वाणी तथा बुद्धि से परे, अनादि, अनन्त, एक तथा शुद्ध कहा जाता है। सगुणब्रह्म को जगत् का सृष्टि, पालन एवं संहारकर्त्ता, विश्वरूप, सबकी आत्मा, ईश्वर, परमात्मा, समस्त दिव्य गुणों से युक्त, मोक्षदाता, परमदयालु, सर्वाधार, अत्यन्त सूक्ष्म एवं अत्यन्त महान् आदि-आदि कहा जाता है। महाभारत में सैकड़ों स्थल पर भगवान् शिव को परमतत्त्व या ब्रह्म कहा गया है अथवा उन्हें ऐसी विशेषताओं से युक्त बताया गया है जो उन्हें ब्रह्म सिद्ध करती हैं।

इन्द्रकील पर्वत पर अर्जुन ने तपस्या द्वारा शिव को प्रसन्नकर पाशुपतास्त्र प्राप्त किया था। उस समय जब शिव उनके समक्ष असली रूप में प्रकट हुए तो अर्जुन ने उनकी स्तुति की। उसने अपनी स्तुति में शिव को जटाजूटधारी, सर्वदेवेश्वर, महादेव, नीलग्रीव, समस्त कारणों में सर्वश्रेष्ठ कारण, त्रिनेत्रधारी, सर्वव्यापी, सभी देवों के आश्रय, सभी से अपराजित रहनेवाले, विष्णुरूप, जगत्संहारक, त्रिशूलधारण करनेवाले, मंगलकारक, सृष्टिकर्त्ता, परमेश्वर, भूतगणों के स्वामी तथा प्रकृति-पुरुष से परे आदि कहा है।(महाभारत वनपर्व 39/74-79)

गणेशं जगत: शम्भुं लोककारणकारणम्।

प्रधानपुरुषातीतं परं सूक्ष्मतरं हरम्।। (महा. वनपर्व 39/79)

अर्थात्- आप भूतगणों के स्वामी, सम्पूर्ण जगत् का कल्याण करनेवाले तथा जगत् के कारणों के भी कारण हैं। प्रकृति और पुरुष दोनों से परे अत्यन्त सूक्ष्मस्वरूप तथा भक्तों के पापों को हरनेवाले हैं।

अर्जुन को दुबारा पाशुपतास्त्र की प्राप्ति स्वप्न में जयद्रथवध की पूर्वरात्रि को हुई थी। इस प्रसंग में भी भगवान् शिव को परमात्मा, मस्तक पर जटाजूट धारण करनेवाला, गौरवर्ण, मृगचर्मधारी, सहस्त्रनेत्रों से युक्त, अच्युत, सभी प्राणियों के रक्षक तथा सनातन ब्रह्मस्वरूप कहा गया है।(महा. द्रोणपर्व 80/38-43)

स्वप्न में ही श्रीकृष्ण एवं अर्जुन ने भगवान् शिव की स्तुति की और उसमें उन्हें जगत् का आदि कारण, लोकस्त्रष्टा, अजन्मा, ईश्वर, अविनाशी, योगों के परम आश्रय, चराचर जगत् की सृष्टि एवं संहार करनेवाले, वरदाता, रुद्र(दुःख दूर करनेवाले), पशुपति, त्रिनेत्रधारी, शान्तिस्वरूप, पिनाकधारी, त्रिशूलधारी, विश्वात्मा, विश्व के स्वामी, सहस्त्रों सिर, भुजा, नेत्र एवं पैरवाले तथा भक्तवत्सल आदि कहा।(महाभारत द्रोणपर्व 80/44-47, तथा 80/55-64)

अश्वत्थामा के आग्नेयास्त्र का जब अर्जुन एवं श्रीकृष्ण पर कोई असर नहीं हुआ तो वहाँपर सहसा प्रकट हुए व्यासजी से उसने इसका कारण पूछा। कारण बताने के प्रसंग में व्यासजी ने शिवजी को संपूर्ण विश्व का उत्पत्ति-स्थान, जगत् का पालक, संपूर्ण देवों द्वारा स्तुत्य, सूक्ष्मातिसूक्ष्म, महान् से भी परम महान्, दुःख दूर करनेवाले, सारे क्लेशों को हरनेवाले, दिव्य धनुष धारण करनेवाले, पिनाक, वज्र, त्रिशूल, फरसा, गदा, तलवार, मुसल, परिध और दण्ड आदि धारण करनेवाले, नागों का यज्ञोपवीत पहननेवाले, मोक्ष के कारण, रुद्राक्षधारी, विश्वरूप, धर्म तथा स्तवन करने योग्य कहा है(महाभारत द्रोणपर्व 201/62-69)। वहीं पर आगे कही गया है-

.....

अजमीशानमव्यक्तं कारणात्मानमच्युतम्। (महा. द्रोणपर्व 201/70-71)

अर्थात्-उन अजन्मा, ईशान अव्यक्त, कारणस्वरूप और अपनी महिमा से कभी च्युत न होनेवाले परमात्मा को(उनके पार्षदस्वरूप भूतगणों ने घेर रक्खा था)।

श्रीनारायण को हिमालय पर्वत पर तपस्या करने के फलस्वरूप रुद्रदेव के दर्शन हुए थे। उस समय वे शिव की स्तुति में उन्हें आदिदेव, विश्व की सृष्टि एवं रक्षा करनेवाले, प्रजापतियों के भी कारण, देवता, असुर, नाग, मानव आदि सभी प्राणियों के अखिल समुदायों के कर्त्ता, पंच महाभूत, काल, ब्रह्मा तथा सम्पूर्ण चराचर के कर्त्ता, कालस्वरूप तथा सबसे परे कहा है। (महाभारत द्रोणपर्व 201/72-74 आदि)

व्यासजी अर्जुन को भगवान् शिव की महिमा शतरुद्रिय स्तोत्र की व्याख्या के माध्यम से समझाते

हुए शिव को सर्वसमर्थ, सम्पूर्ण लोकों के स्वामी एवं शासक, वरदायक, ईश्वर, जगत् के कारण भूत, अव्यक्त प्रकृति, विश्वात्मा, कर्मों के फलदाता, विश्वनियन्ता, भूत, भविष्य एवं वर्तमान के कारण, यागेश्वर, सर्वस्वरूप, तीनों लोकों के एकमात्र स्रष्टा, शुद्धात्मा, सनातन, जन्म, मृत्यु तथा जरा आदि विकारों से परे तथा ज्ञानस्वरूप कहा है(द्रोणपर्व 202/9-18)।

शतरुद्रिय की व्याख्या में आगे व्यासजी ने शिव को शान्तस्वरूप, नीलकण्ठ, जटाजूटधारी, कालस्वरूप, भवसागर से पार उतारनेवाले, उत्तमतीर्थ, सर्वस्वरूप, सबके प्रिय, परशुरामरूप, बहुरूप, सहस्र सिर, नेत्र, बाहु और पैरवाले, वरदायक, भुवनेश्वर, त्रिनेत्रधारी, अविनाशी, धर्मस्वरूप, धर्म के ईश्वर, पिनाकधारी, परमधाम, परमपद, सनातन, विश्वात्मा तथा शुभाशुभ कर्मों के फलदाता, आदि कहा है।(द्रोणपर्व 202/27-144)

धाता च स विधाता च विश्वात्मा विश्वकर्मकृत्।
सर्वासां देवतानां च धारयत्यवपुर्वपुः।।
सर्वदेवैः स्तुतो देवः सैकधा बहुधा च सः।
शतधा सहस्रधा चैव भूयः शतसहस्रधा।। (द्रोणपर्व 202/105-106)

अर्थात्-वे ही धाता, विधाता, विश्वात्मा और विश्वरूपी कार्य के कर्त्ता हैं। वे शरीररहित होकर भी सम्पूर्ण देवताओं के शरीर धारण करते हैं। सम्पूर्ण देवता सदा उनकी स्तुति करते हैं। वे महादेवजी एक होकर भी अनेक हैं। सौ, हजार और लाखों रूपों में वे ही विराज रहे हैं।

त्रिपुरासुर से भयभीत देवता शिव की शरण में जाकर उस असुर को मारने के निमित्त स्तुति करते हैं। उस समय वे अपनी स्तुति में शिव को इस प्रकार कहते हुए नमस्कार करते हैं-

अर्हाय चैव शुद्धाय क्षयाय क्रथनाय च।
दुर्वारणाय शुक्राय ब्रह्मणे ब्रह्मचारिणे।।
ईशानायाप्रमेयाय नियन्त्रे चर्मवाससे।
तपोरताय पिङ्गाय व्रतिने कृत्तिवाससे।। (महा. कर्णपर्व 33/58-59)

अर्थात्-आप पूजनीय, शुद्ध तथा प्रलयकाल में सबका संहार करनेवाले हैं। आपको रोकना या पराजित करना सर्वथा कठिन है। आप शुक्लवर्ण, ब्रह्म, ब्रह्मचारी, ईशान, अप्रमेय, नियन्ता तथा व्याघ्रचर्ममय वस्त्र धारण करनेवाले हैं। आप सदा तपस्या में तत्पर रहनेवाले, पिङ्गलवर्ण, व्रतधारी और कृत्तिवासा हैं। आपको नमस्कार है।

अश्वत्थामा ने पाण्डव शिविर में सोये पांचाल आदि वीरों का संहार करने के लिये भगवान् शिव से खड्ग प्राप्त किया था। वह खड्ग अश्वत्थामा ने शिवजी की स्तुति से प्राप्त किया था। उस स्तुति में उन्होंने भगवान् शिव को वरदायक, नीलकण्ठ, अजन्मा, शुद्धात्मा, संहारकारी, विश्वरूप, अनेक रूपधारी, शमशानवासी, गणों के अधिपति, सर्वव्यापी तथा ब्रह्मा आदि की सृष्टि करनेवाले आदि-आदि

कहा है।(सौप्तिकपर्व 7/2-11)

शुक्रं ब्रह्मसृजं ब्रह्म ब्रह्मचारिणमेव च।
व्रतवन्तं तपोनिष्ठमनन्तं तपतां गतिम्।। (महा. सौप्तिकपर्व 7/7)

अर्थात्-आप शुद्धस्वरूप ब्रह्म हैं। आपने ही ब्रह्माजी की सृष्टि की है। आप ब्रह्मचारी, व्रतधारी तथा तपोनिष्ठ हैं, आपका कहीं अन्त नहीं है। आप तपस्वीजनों के आश्रय हैं।

दक्ष अपने यज्ञ के विध्वंस हो जानेपर भगवान् शिव की शरण लेता हुआ उन्हें प्रणाम करते हुए कहता है-

प्रपद्ये देवमीशानं शाश्वतं ध्रुवमव्ययम्।
महादेवं महात्मानं विश्वस्य जगतः पतिम्।।[1] (महा. शान्तिपर्व 284/57)

अर्थात्-जो सम्पूर्ण जगत् के शासक, पालक, महान् आत्मा, नित्य, सनातन, अविकारी और आराध्यदेव हैं, उन महादेवजी की आज मैं शरण लेता हूँ।

तदनन्तर भगवान् शिव ने प्रकट होकर दक्ष को मनोवांछित वर दिया। वर-प्राप्ति के पश्चात् दक्ष ने भगवान् शिव की एक हजार आठ नामों से स्तुति की।[2] इस स्तुति में वे भगवान् शिव को देवदेवेश्वर, देव-दानव-पूजित, सूर्य, ब्रह्म तथा इन्द्रस्वरूप, अष्टमूर्तिरूप(जिसमें सभी देवों का निवास है), विष्णुरूप, कारण, कार्य, क्रिया और करणरूप, सत् और असत् पदार्थों की उत्पत्ति एवं प्रलय के हेतु, वरद, पाप एवं दुःख को दूर करनेवाले, पशुपति, सर्वस्वरूप, संपूर्ण भूतों की आत्मा, मन्त्रस्वरूप, अवस्था में सबसे ज्येष्ठ और गुणों में सबसे श्रेष्ठ, काल के नियन्ता, भीषण व्रत को धारण करनेवाले, ध्यानपरायण, रुद्राक्षधारी, परम शान्तरूप, व्यक्ताव्यक्तस्वरूप, परमेश्वर, सब कुछ देनेवाले, ब्रह्म, ॐकारस्वरूप, वेद एवं उपनिषद् जिनकी महिमा का गान करते हैं, गायत्रीरूप, शतरुद्रिय के नामों को धारण करनेवाले, ब्रह्मा, विष्णु एवं प्राचीन ऋषियों द्वारा जिनका माहात्म्य अज्ञात है, सबको माया से मोहनेवाले आदि-आदि कहा है(महाभारत, शान्तिपर्व, मोक्षधर्मपर्व 284/69-180)। स्तुति के कुछ अंश देखें -

चराचरस्य स्रष्टा त्वं प्रतिहर्ता तथैव च।
त्वामाहुर्ब्रह्मविदुषो ब्रह्म ब्रह्मविदां वर।।
मनसः परमा योनिः खं वायुर्ज्योतिषां निधिः।
ऋक्सामानि तथोङ्कारमाहुस्त्वां ब्रह्मवादिनः।।
आदिश्चान्तश्च देवानां गायत्र्योंकार एव च।
न ब्रह्मा न च गोविन्दः पौराणा ऋषयो न ते।

1. यह श्लोक यथावत् वायुपुराण(पूर्वार्द्ध 1/1) में भी पाया जाता है।

2. यह स्तुति थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ ब्रह्मपुराण, 40/2-100 तथा वायु पुराण, 1/30/ 180-284 में भी पायी जाती है। यही स्तुति थोड़े परिवर्तन के साथ वामन पुराण, सरो-माहात्म्य 26/63-163 में वेन द्वारा की गयी है।

माहात्म्यं वेदितुं शक्ता याथातथ्येन ते शिव।।

..... सर्वेषु देवेषु वरिष्ठो भगवाञ्छिवः।

अर्थात्-ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ! आप ही चराचर जीवों की सृष्टि तथा संहार करनेवाले हैं। ब्रह्मज्ञानी पुरुष आपको ही ब्रह्म कहते हैं। वेदवादी विद्वान् आपको ही मन का परम कारण, आकाश, वायु, तेज की निधि, ऋक्, साम तथा ॐकार बताते हैं। आप देवताओं के आदि और अन्त हैं। गायत्री-मन्त्र और ॐकार भी आप ही हैं। शिव! आपके माहात्म्य को ठीक-ठीक जानने में ब्रह्मा, विष्णु तथा प्राचीन ऋषि भी समर्थ नहीं हैं। भगवान् शिव सब देवताओं में श्रेष्ठ हैं।(महाभारत, शान्तिपर्व, मोक्षपर्व 284/118-119, 130, 160, 193)

दक्ष द्वारा की गयी भगवान् शिव की स्तुति को देखने से यह भलीभाँति स्पष्ट हो जाता है कि भगवान् शिव ही ब्रह्म, सर्वश्रेष्ठ, सर्वपूज्य, धर्म आदि पुरुषार्थों के साधक, परम दयालु, भक्तों को वर देने के लिये सदैव उत्सुक, आशुतोष, भक्तों की माँग से ज्यादा वर देनेवाले, सभी ऋषियों तथा देवों द्वारा अगम्य तथा सभी देवों की सृष्टि एवं प्रलय के हेतु हैं।

युधिष्ठिर भीष्म पितामह से भगवान् शंकर के माहात्म्य के बारे में पूछते हैं, वे कहते हैं-

बभ्रवे विश्वरूपाय महाभाग्यं च तत्त्वतः।

सुरासरगुरौ देवे शंकरेऽव्यक्तयोनये।। (महा. अनुशासनपर्व 14/2)

अर्थात्-जो विराट् विश्वरूपधारी हैं, अव्यक्त के भी कारण हैं, उन सुरासुर गुरु भगवान् शंकर के माहात्म्य का यथार्थरूप से वर्णन कीजिये। इस प्रश्न के उत्तर में भीष्मजी कहते हैं कि मैं महादेवजी के गुणों का वर्णन करने में असमर्थ हूँ। जो भगवान् सर्वत्र व्यापक हैं, किन्तु(सबके आत्मा होने का कारण) सर्वत्र देखने में नहीं आते हैं, ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र के भी स्रष्टा तथा प्रभु हैं, ब्रह्मा आदि देवों से लेकर पिशाचतक जिनकी उपासना करते हैं, जो प्रकृति से भी परे और पुरुष से भी विलक्षण हैं, योगवेत्ता तत्त्वदर्शी ऋषि जिनका चिन्तन करते हैं, जो अविनाशी परम ब्रह्म एवं सदसत्स्वरूप हैं, जिन देवाधिदेव प्रजापति शिव ने अपने तेज से प्रकृति एवं पुरुष को क्षुब्ध करके ब्रह्माजी की सृष्टि की, उन्हीं देवदेव बुद्धिमान् महादेवजी के गुणों का वर्णन करने में गर्भ, जन्म, जरा और मृत्यु से युक्त कौन मनुष्य समर्थ हो सकता है?.....मैं परात्पर श्रीकृष्ण के सिवा किसी दूसरे को नहीं देखता, जो देवाधिदेव महादेवजी के नामों की पूर्णरूप से व्याख्या कर सके।

अशक्तोऽहं गुणान् वक्तुं महादेवस्य धीमतः।
यो हि सर्वगतो देवो न च सर्वत्र दृश्यते।।
ब्रह्मविष्णुसुरेशानां स्रष्टा च प्रभुरेव च।
ब्रह्मादयः पिशाचान्ता यं हि देवा उपासते।।
प्रकृतीनां परत्वेन पुरुषस्य च यः परः।

चिन्त्यते यो योगविद्भिर्ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।
अक्षरं परमं ब्रह्म असच्च सदसच्च यः।।
प्रकृतिं पुरुषं चैव क्षोभयित्वा स्वतेजसा।
ब्रह्माणमसृजत् तस्माद् देवदेवः प्रजापतिः।।
को हि शक्तो गुणान् वक्तुं देवदेवस्य धीमतः।
गर्भजन्मजरायुक्तो मर्त्यो मृत्युसमन्वितः।।
.....परतरं चैव नान्यं पश्यामि भारत।
व्याख्यातुं देवदेवस्य शक्तो नामान्यशेषतः।। (महा. अनु. प. 14/3-7, 15)

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को महादेवजी के माहात्म्य की कथा सुनायी। उस कथा में श्रीकृष्ण ने उपमन्यु द्वारा महादेवजी की प्राप्ति तथा उनकी स्तुति तथा स्वयं अपने द्वारा शिवजी के दर्शन पाने आदि का वर्णन किया। उपमन्यु इन्द्र को महादेवजी की महत्ता बताते हुए कहते हैं कि "महादेवजी का पद स्थूल, सूक्ष्म, उपमारहित, इन्द्रियों द्वारा अग्राह्य, सगुण, निर्गुण तथा गुणों का नियामक है। इन्द्र! जो सम्पूर्ण विश्व के अधीश्वर, प्रकृति के भी नियामक, लोक(जगत् की सृष्टि) तथा सम्पूर्ण लोकों के संहार के भी कारण हैं, भूत, वर्तमान और भविष्य-ये तीनों काल जिनके स्वरूप हैं, जो सबके उत्पादक एवं कारण हैं, क्षर-अक्षर, अव्यक्त, विद्या-अविद्या, कृत-अकृत तथा धर्म और अधर्म जिनसे प्रकट हुए हैं, उन महादेवजी को ही मैं सबका परम कारण बताता हूँ।"

स्थूलं सूक्ष्ममनौपम्यमग्राह्यं गुणगोचरम्।
गुणहीनं गुणाध्यक्षं परं माहेश्वरं पदम्।।
विश्वेशं कारणगुरुं लोकालोकान्तकारणम्।
भूताभूतभविष्यच्च जनकं सर्वकारणम्।।
अक्षरक्षरमव्यक्तं विद्याविद्ये कृताकृते।
धर्माधर्मौ यतः शक्र तमहं कारणं ब्रुवे।। (महा. अनु. प. 14/224-226)

पुनः भगवान् शिव की अपनी स्तुति में उपमन्यु ने उन्हें सबका ईश्वर, संसारबन्धन का नाश करनेवाले, मायास्वरूप, चिन्त्य और अचिन्त्य रूपवाले, भक्तवत्सल, विश्व की उत्पत्ति के कारण आदि-आदि कहा है। उन्हें संपूर्ण प्राणियों का आदिकारण, अविनाशी, समस्त तत्त्वोंके विधान का ज्ञाता, प्रधान, परमपुरुष, दाहिने अंग से ब्रह्मा तथा बायें से विष्णु तथा प्रलय के लिये रुद्र को उत्पन्न करनेवाले कहा है।(महा. अनु. प. 14/316, 327, 346-348)

भगवान् श्रीकृष्ण ने पुत्र-प्राप्ति के निमित्त उपमन्यु से शैवी दीक्षा ले तपस्या की थी। उस तपस्या के फलस्वरूप भगवान् शिव प्रकट हुए। उस समय श्रीकृष्ण ने शिव की स्तुति में उन्हें सबके कारणभूत सनातन परमेश्वर, ब्रह्मादि के भी अधिपति, ब्रह्मा, रुद्र, अग्निस्वरूप, स्थावर-जंगम की

सृष्टि करनेवाले, सर्वात्मा, प्रभु, पुराण-पुरुष, मूर्तिमान परब्रह्म, परमगति आदि-आदि कहा है। (महा. अनु. प. 14/407-423)

उपमन्यु तण्डि ऋषि की कथा के प्रसंग में श्रीकृष्ण से कहते हैं कि उन्होंने भगवान् शिव के प्रति इस प्रकार भाव व्यक्त किया था-

यं पठन्ति सदा सांख्याश्चिन्तयन्ति च योगिनः।
परं प्रधानं पुरुषमधिष्ठातारमीश्वरम्।।
उत्पत्तौ च विनाशे च कारणं यं विदुर्बुधाः।
देवासुरमुनीनां च परं यस्मान्न विद्यते।।
अजं तमहमीशानमनादिनिधनं प्रभुम्।
अत्यन्तसुखिनं देवमनघं शरणं व्रजे।। (महा. अनु. प. 16/4-6)

अर्थात्-सांख्यशास्त्र के विद्वान् पर, प्रधान, पुरुष, अधिष्ठाता और ईश्वर कहकर सदा जिनका गुणगान करते हैं, योगीजन जिनके चिन्तन में लगे रहते हैं, विद्वान् पुरुष जिन्हें जगत् की उत्पत्ति और विनाश का कारण समझते हैं, देवताओं, असुरों और मुनियों में भी जिनसे श्रेष्ठ दूसरा कोई नहीं है, उन अजन्मा, अनादि, अनन्त, अनघ और अत्यन्त सुखी, प्रभावशाली ईश्वर महादेवजी की मैं शरण लेता हूँ।

वे आगे कहते हैं कि-इस भाव को व्यक्त करते ही तण्डि ने उन तपोनिधि, अविकारी, अनुपम, अचिन्त्य, शाश्वत, ध्रुव, निष्कल, सकल, निर्गुण एवं सगुण ब्रह्म का दर्शन प्राप्त किया, जो योगियों के परमानन्द, अविनाशी एवं मोक्षरूप हैं। वे ही मनु, इन्द्र, अग्नि तथा ब्रह्मा आदि की भी गति हैं। मन और इन्द्रियों के द्वारा उनका ग्रहण नहीं हो सकता। वे अग्राह्य, अचल, शुद्ध, बुद्धि के द्वारा अनुभव करने योग्य तथा मनोमय हैं। उनका ज्ञान होना अत्यन्त कठिन है। वे अप्रमेय हैं। जिन्होंने अपने अन्तःकरण को पवित्र एवं वशीभूत नहीं किया है, उनके लिये वे सर्वथा दुर्लभ हैं। वे ही सम्पूर्ण जगत् के कारण हैं। अज्ञानमय अन्धकार से अत्यन्त परे हैं।

एवं ब्रुवन्नेव तदा ददर्श तपसां निधिम्।
तमव्ययमनौपम्यमचिन्त्यं शाश्वतं ध्रुवम्।।
निष्कलं सकलं ब्रह्म निर्गुणं गुणगोचरम्।
योगिनां परमानन्दमक्षरं मोक्षसंज्ञितम्।।
मनोरिन्द्राग्निमरुतां विश्वस्य ब्रह्मणो गतिम्।
अग्राह्यमचलं शुद्धं बुद्धिग्राह्यं मनोमयम्।।
दुर्विज्ञेयमसंख्येयं दुष्प्रापमकृतात्मभिः।
योनिं विश्वस्य जगतस्तमसः परतः परम्।। (महा. अनु. प. 16/7-10)

तण्डि ऋषि भगवान् शिव की स्तुति में कहते हैं कि "ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, विश्वेदेव तथा महर्षि भी आपको यर्थाथरूप से नहीं जानते हैं। .....काल, पुरुष और ब्रह्म-इन तीन नामों द्वारा आप ही प्रतिपादित होते हैं। ..... आप ही स्वर्ग और मोक्ष हैं। .....ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, स्कन्द आदि आप ही हैं। .....आप ही प्रकृति से परे निश्चल एवं अविनाशी तत्त्व हैं। आप ही इन्द्रियाँ और उनके विषय हैं। आप ही विश्व और अविश्व-दोनों से परे विलक्षण भाव हैं तथा आप ही चिन्त्य और अचिन्त्य हैं। जो यह परम ब्रह्म है, जो वह परमपद है तथा जो सांख्यवेत्ताओं और योगियों की गति है, वह आप ही हैं।(महा. अनु. प. 16/16-17, 21-22, 24-25)

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थश्च प्रकृतिभ्यः परं ध्रुवम्।
विश्वाविश्वपरोभावश्चिन्त्याचिन्त्यस्त्वमेव हि।।
यच्चैतत् परमं ब्रह्म यच्च तत् परमं पदम्।
या गतिः सांख्ययोगानां स भवान् नात्र संशयः।। (महा. अनु. प. 16/24-25)

उपरोक्त स्तुति के उपरान्त तण्डि ऋषि ने भगवान् शिव की सहस्त्रनामों [1] द्वारा वंदना की। ये सहस्त्रनाम दक्ष प्रजापति के सहस्त्रनाम से भिन्न हैं। इस सहस्त्रनाम (महा. अनु. प. 17/31-153) में भी भगवान् शिव को सर्वश्रेष्ठ, वरस्वरूप(महा. अनु. प. 17/31), भगवान्, पापियों को पीड़ा देनेवाले(महा. अनु. प. 17/33), सर्वभूतात्मा, विश्वरूप(महा. अनु. प. 17/35), प्रणव आदि मंत्र स्वरूप(महा. अनु. प.17/39), दुःख हरण करनेवाले(महा. अनु. प. 17/42), कृष्ण अर्थात् सच्चिदानन्दस्वरूप, ब्रह्मा, विष्णु एवं महेशस्वरूप(महा. अनु. प. 17/45), अज, उर्ध्वलिंग(महा. अनु. प. 17/46), नित्य, अपनी मायारूपी पाश से बांधनेवाले(महा. अनु. प. 17/51), भगवान् विष्णु ने जिन्हें आराधना करके प्रसन्न किया था(महा. अनु. प. 17/56), संसारबंधन से छुड़ानेवाले(महा. अनु. प. 17/60), प्राणियों की तीन दशाओं-जन्म, स्थिति एवं विनाश के हेतुभूत, कर्म के समस्त बन्धनों को काटनेवाले(महा. अनु. प. 17/62), सर्वदा कृपा करनेवाले, मोक्षस्वरूप, सब कुछ देनेवाले(महा. अनु. प. 17/67), बलि को बांधनेवाले वामन रूपधारी(महा. अनु. प. 17/71), नियन्ता, ईश्वर, काल, विष्णुस्वरूप(महा. अनु. प. 17/75), ब्रह्मा(महा. अनु. प. 17/76), चतुर्मुख, महालिंगस्वरूप(महा. अनु. प. 17/77), भक्तपराधीन, जगत्स्त्रष्टा, पशुपति(महा. अनु. प. 17/79), अविनाशी परम ब्रह्म(महा. अनु. प. 17/80), वेदों का कर्त्ता(महा. अनु. प. 17/81), कल्याणकारी(महा. अनु. प. 17/83), सबके अन्तरात्मा(महा. अनु. प. 17/87), महामायावी(महा. अनु. प. 17/88), देवाधिपति(महा. अनु. प. 17/91), दया करके शीघ्र प्रसन्न होनेवाले, सुगमता से प्राप्त होनेवाले(महा. अनु. प. 17/92), सबके आदि कारण, कालरूप(महा. अनु. प. 17/94),

1. ये सहस्त्रनाम लिंगपुराण(पूर्वार्ध 65/54-168) में भी थोड़े परिवर्तन के साथ मिलते हैं। यह सहस्त्रनाम इसी पुस्तक में अन्यत्र दिया गया है।

भस्मस्वरूप, कल्पवृक्षस्वरूप (महा. अनु. प. 17/95), श्रीकृष्णरूप से वंशी बजानेवाले, मायावी (महा. अनु. प. 17/100), देवताओं के भी ईश्वर (महा. अनु. प. 17/102), किसी के द्वारा पराजित न होनेवाले (महा. अनु. प. 17/103), समस्त भोगों एवं गुणों की प्राप्ति करानेवाले (महा. अनु. प. 17/106), सत् एवं असत्स्वरूप (महा. अनु. प. 17/108), बहुतसी विद्याओं के ज्ञाता (महा. अनु. प. 17/109), काम, क्रोधादि शत्रुओं को क्षीण कर देनेवाले (महा. अनु. प. 17/116), तारनेवाले (महा. अनु. प. 17/119), भक्तों को सब कुछ सहन करने की शक्ति देनेवाले, सर्वोत्तम मार्गस्वरूप (महा. अनु. प. 17/121), साकार-निराकारस्वरूप (महा. अनु. प. 17/24), संपूर्ण कलाओं से युक्त (महा. अनु. प. 17/130), सर्वदेवमय, सबके ज्ञानदाता (महा. अनु. प. 17/132), श्याम-गौर हरि-हर मूर्ति (महा. अनु. प. 17/133), अनन्त रूपवाले (महा. अनु. प. 17/135), ब्रह्मविद्या के स्वामी (महा. अनु. प. 17/137), वराहरूपधारी भगवान् (महा. अनु. प. 17/138), परमात्मा (महा. अनु. प. 17/139), सत्, असत्, साकार, निराकारस्वरूप, मोक्ष के साधनरूप (महा. अनु. प. 17/143), देवताओं एवं असुरों के जन्मदाता (महा. अनु. प. 17/144), देव एवं असुरों के गुरु (महा. अनु. प. 17/145), अचिन्त्य (महा. अनु. प. 17/147), ब्रह्म तथा भक्तों के लिये परम गतिस्वरूप (महा. अनु. प. 17/153) आदि-आदि कहा गया है। तण्डिकृत सहस्रनाम के कुछ श्लोकों को देखें-

अक्षरंपरमं ब्रह्म बलवच्छक्र एव च।
नीतिर्ह्यनीतिः शुद्धात्मा शुद्धो मान्यो गतागतः।।
सद्सद् व्यक्तमव्यक्तं पिता माता पितामहः।
स्वर्गद्वारं प्रजाद्वारं मोक्षद्वारं त्रिविष्टपम्।।
देवासुरेश्वरो विश्वो देवासुरमहेश्वरः।
सर्वदेवमयोऽचिन्त्यो देवतात्माऽऽत्मसम्भवः।।
व्रताधिपः परं ब्रह्म भक्तानां परमा गतिः।
विमुक्तो मुक्ततेजाश्च श्रीमाञ्श्रीवर्धनो जगत्।।

उपरोक्त श्लोकों में भगवान् शिव को अविनाशी ब्रह्म, सर्वोत्कृष्ट परमात्मा, शक्तिशाली, इन्द्र, न्यायस्वरूप, साम, दाम, दण्ड, भेद से रहित, शुद्धस्वरूप, परम पवित्र, सम्मान के योग्य, गमनागमनशील संसारस्वरूप, सत्स्वरूप, असत्स्वरूप, साकाररूप, निराकाररूप, पिता, माता, पितामह, स्वर्ग के साधनस्वरूप, प्रजा के कारण, मोक्ष के साधनरूप, देवताओं और असुरों के ईश्वर, विराट्-स्वरूप, देवताओं और असुरों के महान् ईश्वर, सर्वदेवमय, अचिन्त्यस्वरूप, देवताओं के अन्तरात्मा, स्वयंभू, व्रतों के अधिपति, सर्वश्रेष्ठ, ब्रह्म, भक्तों के लिये परम गतिस्वरूप, नित्य मुक्त, शत्रुओं पर तेज छोड़नेवाले, योगैश्वर्य से सम्पन्न, भक्तों की सम्पत्ति को बढ़ानेवाले तथा जगत्स्वरूप कहा गया है। (महा. अनुशासनपर्व 17/80, 143, 147, 153)

भगवान् शिव पार्वती से पाशुपत-योग के प्रसंग में कहते हैं कि " पहले के मुमुक्षुओं द्वारा भी मैं अव्यक्त और अचिन्त्य ही रहा हूँ। मैंने ही सांख्य और योग की सृष्टि की है। समस्त चराचर जगत् को भी मैंने ही उत्पन्न किया है। मैं पूजनीय ईश्वर हूँ। मैं ही अविनाशी सनातन पुरुष हूँ। मैं प्रसन्न होकर अपने भक्तों को अमरत्व भी देता हूँ।"

अव्यक्तोऽहमचिन्त्योऽहं पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः।
सांख्ययोगौ मया सृष्टौ सर्वं चापि चराचरम्।।
अर्चनीयोऽहमीशोऽहमव्ययोऽहं सनातनः।
अहं प्रसन्नो भक्तानां ददाम्यमरतामपि।।

(महा. अनु. प. 145 / पाशुपत योग वर्णन पृ. 6019, गीता प्रेस, गोरखपुर)

एक स्थल पर भगवान् श्रीकृष्ण युधिष्ठिर से शिवजी की महत्ता बताते हुए कहते हैं कि तीनों लोकों में महादेवजी से बढ़कर दूसरा कोई श्रेष्ठ देवता नहीं है; क्योंकि वे समस्त भूतों की उत्पत्ति के कारण हैं। वे ही रुद्र हैं, वे ही शिव हैं, वे ही अग्नि हैं, वे ही सर्वस्वरूप और सर्वविजयी हैं। उनके एक, दो, अनेक, सौ, हजार और लाखों रूप हैं। भगवान् महादेव ऐसे प्रभावशाली हैं, बल्कि इससे भी बढ़कर हैं। सैकड़ों वर्षों में भी उनके गुणों का वर्णन नहीं किया जा सकता।

नास्ति किंचित्परं भूतं महादेवाद् विशाम्पते।
इह त्रिष्वपि लोकेषु भूतानां प्रभवो हि सः।।
स वै रुद्रः स च शिवः सोऽग्निः सर्वः स सर्वजित्।
.....
एकधा च द्विधा चैव बहुधा च स एव हि।
शतधा सहस्रधा चैव तथा शतसहस्रधा।।
ईदृशः स महादेवो भूयश्च भगवानतः।
न हि शक्या गुणा वक्तुमपि वर्षशतैरपि।।

(महा. अनु. प. 160/6, 39, 43-44)

एक अन्य स्थल पर उपमन्युजी ने भगवान् श्रीकृष्ण के समक्ष भगवान् शिव के बारे में निम्नलिखित उद्‌गार व्यक्त किया है-

नास्ति शर्वसमो देवो नास्ति शर्वसमा गतिः।
नास्ति शर्वसमो दाने नास्ति शर्वसमो रणे।।

अर्थात्-महादेवजी के समान कोई देवता नहीं है। महादेवजी के समान कोई गति नहीं है। दान में शिवजी की समानता करनेवाला कोई नहीं है तथा युद्ध में भी भगवान् शंकर के समान दूसरा कोई (योद्धा) नहीं है।(महा. अनु. प. 15/11)

शिवोपासना

भगवान् शिव को सभी प्रकार के सुख व भोग का दाता, मोक्ष एवं कर्मफल का दाता तथा सभी कामनाओं को पूरा करनेवाला माना जाता है। वे शीघ्र प्रसन्न होने के कारण ही आशुतोष कहलाते हैं। उनकी इन सभी विशेषताओं को महाभारत में सैकड़ों स्थलों पर स्पष्टरूप से बताया गया है। इन्हीं विशेषताओं के कारण उनकी उपासना से सुर-असुर, देव, मानव, नाग, किन्नर, गन्धर्व आदि सभी प्रकार के लोगों ने उनसे मनोवांछित वर पाये हैं।

शतरुद्रिय स्तोत्र की व्याख्या के अन्तर्गत एक स्थल पर कहा गया है कि जो सब प्रकार की ग्रहबाधाओं से पीड़ित हैं और सम्पूर्ण पापों में डूबे हुए हैं, वे भी यदि शरण में आ जायँ तो शरणागतवत्सल भगवान् शिव अत्यन्त प्रसन्न होकर उन्हें पाप-ताप से मुक्त कर देते हैं। वे ही प्रसन्न होने पर मनुष्यों को आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, धन और प्रचुरमात्रा में मनोवांछित पदार्थ देते हैं। वे ही ईश्वर होने के नाते लोक में मनुष्यों के शुभाशुभ कर्मों के फल देने में संलग्न रहते हैं। सम्पूर्ण कामनाओं के ईश्वर भी वे ही बताये जाते हैं।

सर्वैर्ग्रहैर्गृहीतान् वै सर्वपापसमान्वितान्।।
स मोचयति सुप्रीतः शरण्यः शरणागतान्।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं वित्तं कामांश्च पुष्कलान्।।
स ददाति मनुष्येभ्यः .....।
स चैव व्यापृतो लोके मनुष्याणां शुभाशुभे।
ऐश्वर्याच्चैव कामनामीश्वरश्च स उच्यते।। (महा. द्रोणप. 202/111-114)

तण्डि ऋषि भगवान् शिव के प्रति कह रहे हैं कि "विभो! जो जन्म-मरण से भयभीत हो संसार-बन्धन से मुक्त होने के लिये प्रयत्न करते हैं, उन यतियों को निर्वाण (मोक्ष) प्रदान करनेवाले आप ही हैं। प्रभो! यदि आप स्वयं ही कृपा करके जीव का उद्धार करना न चाहें तो उसके बारंबार जन्म और मृत्यु होते रहते हैं। आप ही स्वर्ग एवं मोक्ष के द्वार हैं। आप ही उनकी प्राप्ति में बाधा[1] डालनेवाले हैं तथा आप ही दोनों वस्तुएँ प्रदान करते हैं। आप ही स्वर्ग एवं मोक्ष हैं।

जातीमरणभीरूणां यतीनां यततां विभो।।
निर्वाणद .....।
अनिच्छतस्तव विभो जन्ममृत्युरनेकतः।
द्वारं तु स्वर्गमोक्षाणामाक्षेप्ता त्वं ददासि च।।
त्वं वै स्वर्गश्च मोक्षश्च .....। (महा. अनु. प. 16/14-15, 20-21)

1. यहाँ बाधा डालने का अर्थ कृपा न करना है। भगवान् की कृपा भक्तों, श्रद्धालुओं एवं उपासकों आदि के लिये ही सुरक्षित होती है। अन्य लोगों पर कृपा करना या न करना उनकी इच्छा पर है।

वे पुनः कहते हैं कि संसिद्धि(मुक्ति) की इच्छा रखनेवाले पुरुषों की जो परमगति है, वह ये ईश्वर(शिव) ही हैं(महा. अनु. प. 16/34)। ये ही मुक्त पुरुषों के अपवर्ग(मोक्ष) और आत्मज्ञानियों के कैवल्य हैं(महा. अनु. प. 16/36)। जिन्हें जान लेनेपर फिर जन्म और मरण का बन्धन नहीं रह जाता है तथा जिनका ज्ञान प्राप्त हो जानेपर फिर दूसरे किसी उत्कृष्ट(उत्तम) ज्ञेय तत्त्व(जानने योग्य तत्त्व) का जानना शेष नहीं रहता है, जिन्हें प्राप्त कर लेने पर विद्वान् पुरुष बड़े से बड़े लाभ को भी उनसे अधिक नहीं मानता है, जिस सूक्ष्म परम पदार्थ को पाकर ज्ञानी मनुष्य ह्रास और नाश से रहित परमपद को प्राप्त कर लेता है, सत्त्व आदि तीन गुणों तथा चौबीस तत्त्वों को जाननेवाले सांख्यज्ञानविशारद सांख्ययोगी विद्वान् जिस सूक्ष्म तत्त्व को जानकर उस सूक्ष्म ज्ञानरूपी नौका के द्वारा संसारसमुद्र से पार होते और सब प्रकार के बन्धनों से मुक्त हो जाते हैं, प्राणायामपरायण पुरुष वेदवेत्ताओं के जानने योग्य तथा वेदान्त में प्रतिष्ठित जिस नित्य तत्त्व का ध्यान एवं जप करते हैं और उसी में प्रवेश कर जाते हैं; वही ये महेश्वर हैं। ॐकाररूपी रथपर आरूढ़ होकर वे सिद्ध पुरुष इन्हीं में प्रवेश करते हैं। ये(शिव) ही देवयान के द्वाररूप सूर्य कहलाते हैं।

यं ज्ञात्वा न पुनर्जन्म मरणं चापि विद्यते।
यं विदित्वा परं वेद्यं वेदितव्यं न विद्यते।।
यं लब्ध्वा परमं लाभं नाधिकं मन्यते बुधः।
यां सूक्ष्मां परमां प्राप्तिं गच्छन्नव्ययमक्षयम्।।
यं सांख्या गुणतत्त्वज्ञाः सांख्यशास्त्रविशारदाः।
सूक्ष्मज्ञानतराः सूक्ष्मं ज्ञात्वा मुच्यन्ति बन्धनैः।।
यं च वेदविदो वेद्यं वेदान्ते च प्रतिष्ठितम्।
प्राणायामपरा नित्यं यं विशन्ति जपन्ति च।।
ओंकाररथमारुह्य ते विशन्ति महेश्वरम्।
अयं स देवयानानामादित्यो द्वारमुच्यते।। (महा. अनु. प. 16/40-44)

एक अन्य स्थल पर कहा गया है कि जो सम्पूर्ण भाव से अनुगत होकर महेश्वर की शरण लेते हैं, शरणागतवत्सल महादेवजी इस संसार से उनका उद्धार कर देते हैं। इसी प्रकार भगवान् की स्तुति द्वारा अन्य देवगण भी अपने संसारबन्धन का नाश करते हैं; क्योंकि महादेवजी की शरण लेने के सिवा ऐसी दूसरी कोई शक्ति या तप का बल नहीं है, जिससे मनुष्यों का संसारबन्धन से छुटकारा हो सके।

ये सर्वभावानुगताः प्रपद्यन्ते महेश्वरम्।
प्रपन्नवत्सलो देवः संसारात् तान् समुद्धरेत्।।
एवमन्ये विकुर्वन्ति देवाः संसारमोचनम्।
मनुष्याणामृते देवं नान्या शक्तिस्तपोबलम्।। (महा. अनु. प. 17/168-169)

उपमन्युजी का कथन है कि कुटिल कलिकाल को पाकर सभी पुरुषों को अपना मन भगवान् शंकर के चरणारविन्दों के चिन्तन में लगा देना चाहिये। शिव-भक्तिरूपी रसायन के पी लेनेपर संसाररूपी रोग का भय नहीं रह जाता है।

हरचरणनिरतमतिना भवितव्यमनार्जवं युगं प्राप्य।
संसारभयं न भवति हरभक्तिरसायनं पीत्वा।। (महा. अनु. प. 14/184)

दधीचि मुनि दक्ष के यज्ञमण्डप में घोषणा करते हुए कहते हैं कि "सज्जनों! जिसमें भगवान् शिव की पूजा नहीं होती है, वह न यज्ञ है और न धर्म।" अर्थात् भगवान् शिव ही यज्ञ एवं धर्म-कार्य के फलदाता अथवा ईश्वर हैं(महा. शा. प. 284/12)।

नायं यज्ञो न वा धर्मो यत्र रुद्रो न इज्यते। (महा. शा. प. 284/12)

एक स्थल पर भगवान् शिव भी पार्वती से कहते हैं जिनका चित्त एकाग्र नहीं है, वे ध्यानशून्य असाधु पुरुष मेरे स्वरूप को नहीं जानते(इसी कारण मेरी उपेक्षा करते हैं जैसा कि दक्ष ने किया)। यज्ञ में प्रस्तोतालोग मेरी ही स्तुति करते हैं। सामगान करनेवाले ब्राह्मण रथन्तर साम के रूप में मेरी ही महिमा का गान करते हैं। वेदवेत्ता विप्र मेरा ही यजन करते और ऋत्विज लोग यज्ञ में मुझे ही भाग अर्पित करते हैं(महा. शा. प. 284/25-26)।

..... ध्यानेन हीना न विदन्त्यसन्तः।
मामध्वरे शंसितारः स्तुवन्ति रथन्तरं सामगाश्चोपगान्ति।
मां ब्राह्मणा ब्रह्मविदो यजन्ते ममाध्वर्यवः कल्पयन्ते च भागम्।।
(महा. शा. प. 284/25-26)

यज्ञ का विनाश करने के उपरान्त वीरभद्र ने दक्ष को सलाह देते हुए कहा था- "विप्रवर! तुम देवाधिदेव उमापति भगवान् शिव की शरण में जाओ। महादेवजी का क्रोध भी परम मंगलमय है और दूसरों से मिला हुआ वरदान भी मंगलकारी नहीं होता।"

शरणं गच्छ विप्रेन्द्र देवदेवमुमापतिम्।
वरं क्रोधोऽपि देवस्य वरदानं न चान्यतः।। (महा. शा. प. 284/55)

सम्पत्ति की प्राप्ति के लिये राजर्षि मरुत्त शिवजी की नाममयी स्तुति करते हुए कहते हैं कि "अध्यात्मतत्त्व का विचार करनेवाले ज्ञानी पुरुष मोक्षतत्त्व में जिनकी स्थिति मानते हैं तथा तत्त्वमार्ग में परिनिष्ठित योगीजन अविनाशी कैवल्य पद को जिनका स्वरूप समझते हैं और आसक्तिशून्य समदर्शी महात्मा जिन्हें सर्वत्र समानरूप से स्थित समझते हैं, उन योनिरहित जगत्कारणभूत निर्गुण परमात्मा शिव की मैं शरण लेता हूँ।"

यस्य नित्यं विदुः स्थानं मोक्षमध्यात्मचिन्तकाः।
योगिनस्तत्त्वमार्गस्थाः कैवल्यं पदमक्षरम्।।

यं विदुः सङ्गनिर्मुक्ताः सामान्यं समदर्शिनः।
तं प्रपद्ये जगद्योनिमयोनिं निर्गुणात्मकम्।।

(महा. आश्वमेधिकपर्व, अध्याय 8 पृ. 6114, गीताप्रेस गोरखपुर)

उपरोक्त श्लोकों में भी भगवान् शिव को मोक्ष या कैवल्यस्वरूप बताया गया है। अर्थात् भगवान् शिव की प्राप्ति ही मोक्ष या कैवल्य की प्राप्ति है।

अन्यत्र कहा गया है कि जो कोई भी मनुष्य हो, उसे महात्मा शिव के अर्चा-विग्रह अथवा लिंग की पूजा करनी चाहिये। लिंग अथवा प्रतिमा की पूजा करनेवाला पुरुष बड़ी भारी सम्पत्ति प्राप्त कर लेता है।

पूजयेद् विग्रहं यस्तु लिङ्गं चापि महात्मनः।
लिङ्गं पूजयिता नित्यं महतीं श्रियमश्नुते।। (महा. द्रोणप. 202/140)

(1) शिवभक्ति की महिमा

उपरोक्त सभी उद्धरणों से स्पष्ट है कि व्यक्ति को अपने स्वार्थ एवं परमार्थ की पूर्ति के लिये भगवान् शिव की उपासना करनी चाहिये। भगवान् शिव की पूजा ब्रह्मा, विष्णु तथा इन्द्र सहित सभी देवता करते आये हैं(महा. अनु. प. 14/32, 232 आदि)। इसी प्रकार श्रीकृष्ण ने प्रत्येक युग में महेश्वर को सन्तुष्ट किया है(महा. अनु. प. 14/13)। भगवान् विष्णु ने सुदर्शन चक्र(महा. अनु. प. 14/77) तथा श्रीकृष्ण ने अनेक पुत्रों को शिव के वरदान (महा. अनु. प. 15/3) से प्राप्त किया था। हिरण्यकशिपु, मन्दार, विद्युत्प्रभ तथा शतमुख आदि राक्षस एवं दैत्यों ने उनसे वर पाया(महा. अनु. प. 14/73-86)। क्रतु, याज्ञवल्क्य, परासरपुत्र वेदव्यास, बालखिल्य ऋषिगण, अनसूया, विकर्ण, सावर्णि, इन्द्र, उपमन्यु, लवणासुर तथा परशुराम आदि ने भी शिवोपासना से मनोवांछित फल पाया(महा. अनु. प. अध्याय 14)।

व्यासजी को पुत्र की प्राप्ति(महा. अनु. प. 18/2-3), कपिल को सांख्य-शास्त्र की प्राप्ति(महा. अनु. प. 18/4-5), चारुशीर्ष को अनेक दीर्घजीवी जितेन्द्रिय पुत्रों की प्राप्ति(महा. अनु. प. 18/7-8), बाल्मीकि को ब्रह्महत्या आदि पापों से मुक्ति(महा. अनु. प. 18/8-10), परशुराम को दिव्यास्त्र एवं अमरता की प्राप्ति(महा. अनु. प. 18/11-15), विश्वामित्र को ब्राह्मणत्व की प्राप्ति(महा. अनु. प. 18/16), जैगीषव्य को योग की सभी सिद्धियों की प्राप्ति(महा. अनु. प. 18/37), गर्ग को चौंसठ कलाओं का ज्ञान आदि की प्राप्ति(महा. अनु. प. 18/38-39) तथा पराशर का पुत्ररूप में व्यास की प्राप्ति(महा. अनु. प. 18/40-45) भगवान् शिव की अर्चना से ही हुई थी। शिवोपासना से लाभप्राप्त अत्यल्प लोगों की ही सूची ऊपर दी गयी है। महाभारत में हजारों ऐसे चरित्रों का वर्णन है जिन्हें भगवान् शिव से वर प्राप्त हुए हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण से उपमन्युजी ने कहा था कि "जो पापकर्मी मनुष्य अपने अशुभ आचरणों

से कलुषित हो गये हैं, वे तमोगुणी या रजोगुणी वृत्ति के लोग भगवान् शिव की शरण नहीं लेते हैं। जिनका अन्तःकरण पवित्र है, वे ही द्विज महादेवजी की शरण लेते हैं। जो परमेश्वर शिव का भक्त है, वह सब प्रकार से बर्तता हुआ भी पवित्र अन्तःकरणवाले वनवासी मुनियों के समान है। भगवान् रुद्र संतुष्ट हो जायँ तो वे ब्रह्मपद, विष्णुपद, देवताओंसहित देवेन्द्रपद अथवा तीनों लोकों का आधिपत्य प्रदान कर सकते हैं।"

अशुभैः पापकर्माणो ये नराः कलुषीकृताः।
ईशानं न प्रपद्यन्ते तमोराजसवृत्तयः।।
ईश्वरं सम्प्रपद्यन्ते द्विजा भावितभावनाः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि यो भक्तः परमेश्वरे।।
सदृशोऽरण्यवासीनां मुनीनां भावितात्मनाम्।
ब्रह्मत्वं केशवत्वं वा शक्रत्वं वा सुरैः सह।।
त्रैलोक्यस्याधिपत्यं वा तुष्टो रुद्रः प्रयच्छति। (महा. अनु. प. 18/62-65)

श्रीकृष्ण से वे आगे कहते हैं कि "तात! जो मनुष्य मन से भी भगवान् शिव की शरण लेते हैं, वे सब पापों का नाश करके देवताओं के साथ निवास करते हैं। समस्त लक्षणों से हीन अथवा सब पापों से युक्त मनुष्य भी यदि अपने हृदय से भगवान् शिव का ध्यान करता है तो वह अपने सारे पापों को नष्ट कर देता है। केशव! कीट, पतंग, पक्षी तथा पशु भी यदि महादेवजी की शरण में आ जायँ तो उन्हें भी कहीं किसी का भय नहीं प्राप्त होता है। इसी प्रकार इस भूतलपर जो मानव महादेवजी के भक्त हैं, वे संसार के अधीन नहीं होते-यह मेरा निश्चित विचार है।"

मनासापि शिवं तात ये प्रपद्यन्ति मानवाः।।
विधूय सर्वपापानि देवैः सह वसन्ति ते।
सर्वलक्षणहीनोऽपि युक्तो वा सर्वपातकैः।।
सर्वं तुदति तत्पापं भावयञ्छिवमात्मना।
कीटपक्षिपतङ्गानां तिरश्चामपि केशव।।
महादेवप्रपन्नानां न भयं विद्यते क्वचित्।
एवमेव महादेवं भक्ता ये मानवा भुवि।।
न ते संसारवशगाा इति मे निश्चिता मतिः। (महा. अनु. प. 18/65, 67-70)

युधिष्ठिर को महादेवजी की महिमा बताते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं कि भगवान् शिव प्रसन्न होने पर अमरत्व भी दे सकते हैं। वे उपासक को इतनी शक्ति दे देते हैं, जिससे वह इन्द्र को भी नष्ट कर सकता है।

प्रसन्नो हि महादेवो दद्यादमरतामपि।

वीर्यं च गिरिशो दद्याद् येनेन्द्रमपि शातयेत्। (महा. सौप्तिकपर्व 17/7)

(2) लिंगार्चन – माहात्म्य

महाभारत में अनेक स्थलों पर लिंगपूजा का माहात्म्य बतलाया गया है। पाशुपत योग एवं लिंगपूजा के सन्दर्भ में भगवान् शिव पार्वती से कहते हैं कि "नित्य मेरे ही चिन्तन में लगे रहनेवाले अपने तपस्वी भक्तों के लिये मैं ऐसा उपाय सोचता रहता हूँ, जिससे वे शीघ्र मुझे प्राप्त हो जायँ। तीनों लोकों में मैंने अपने स्वरूपभूत शिवलिंगों की स्थापना की है, जिनको नमस्कारमात्र करके मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाते हैं। होम, दान, अध्ययन और बहुत – सी दक्षिणावाले यज्ञ भी शिवलिंग को प्रणाम करने से मिले हुए पुण्य की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं हो सकते। प्रिये! शिवलिंग की पूजा से मैं बहुत संतुष्ट होता हूँ।"

एवं नित्याभियुक्तानां मद्भक्तानां तपस्विनाम्।
उपायं चिन्तयाम्याशु येन मामुपयान्ति ते।।
स्थापितं त्रिषु लोकेषु शिवलिङ्गं मया मम।
नमस्कारेण वा तस्य मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।।
इष्टं दत्तमधीतं च यज्ञाश्च बहुदक्षिणाः।
शिवलिङ्ग प्रणामस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्।।
अर्चया शिवलिङ्गस्य परितुष्याम्यहं प्रिये।

(महा. अनु. प. अ. 145, पृष्ठ 6020, गीताप्रेस, गोरखपुर)

अश्वत्थामा ने अपने अग्नेयास्त्र को अर्जुन एवं श्रीकृष्ण पर विफल होते देखकर इसका कारण जानने के लिये व्यासजी से पूछा। इसका कारण बताते हुए व्यासजी कहते हैं कि तूने परम पुरुष भगवान् शंकर के उज्ज्वल विग्रह की स्थापना करके होम, जप और उपहारों द्वारा उनकी आराधना की थी। नर – नारायण (वर्तमान जन्म में अर्जुन एवं श्रीकृष्ण) ने शिवलिंग में तथा तूने प्रतिमा में प्रत्येक युग में महादेवजी की आराधना की है। जो भगवान् शंकर को सर्वस्वरूप जानकर शिवलिंग में उनकी पूजा करता है, उसमें सनातन आत्मयोग (आत्मा – परमात्मा के तत्त्व का ज्ञान) तथा शास्त्रयोग (स्वाध्यायजनित ज्ञान) प्रतिष्ठित होते हैं। जो भगवान् शिव के लिंग को सम्पूर्ण भूतों की उत्पत्ति का स्थान जानकर उसकी पूजा करता है, उसपर भगवान् शंकर अधिक प्रेम करते हैं (महा. द्रोण प. 201/90, 92 – 93, 96)।

सर्वभूतभवं ज्ञात्वा लिङ्गमर्चति यः प्रभोः।
तस्मिन्नभ्यधिकां प्रीतिं करोति वृषभध्वजः।। (महा. द्रो. प. 201/96)

एक अन्य स्थल पर कहा गया है कि ऋषि, देवता, गन्धर्व और अप्सराएँ इनके (शिवजी के) ऊर्ध्वलोकस्थित लिंग की पूजा करती हैं। उस लिंग की पूजा होनेपर कल्याणकारी भगवान् शिव

आनंदित होते हैं। सुखी, प्रसन्न तथा हर्षोल्लास से परिपूर्ण होते हैं(महा. द्रो. प. 202/125-126)।

अतः शिवजी की प्रसन्नता के लिये उनके लिंग की उपासना बेहतर है। इसी प्रकार एक अन्य सन्दर्भ में भी कहा गया है कि भगवान् शिव के लिंग की पूजा ब्रह्मा, विष्णु तथा सम्पूर्ण देवता सहित इन्द्र भी करते आये हैं(महा. अनु. प. 14/230-232)।

(3) पाशुपतयोग एवं शिवभक्त की महिमा

उमा के पूछने पर भगवान् शिव ने पाशुपतयोग की चर्चा इस प्रकार की है। वे कहते हैं कि मेरा नाम पशुपति है। अपने रोम-रोम में भस्म रमाये रहनेवाले जो मेरे भक्त मनुष्य हैं उन्हें पाशुपत जानना चाहिये। पूर्वकाल में मैंने रक्षा के लिये, मंगल के लिये, पवित्रता के लिये तथा पहचान के लिये अपने भक्तों को भस्म प्रदान किया था। उस भस्म से संपूर्ण अंगों को लिप्त करके ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाले जटाधारी, मुण्डित अथवा नाना प्रकार की शिखाधारण करनेवाले, विकृत वेश, पिंगलवर्ण, नग्न देह और नाना वेश धारण किये मेरे निःस्पृह और परिग्रहशून्य भक्त मुझमें ही मन-बुद्धि लगाये, मिट्टी का पात्र हाथ में लिये सब ओर भिक्षा के लिये विचरते रहते हैं। समस्त लोक में विचरते हुए वे भक्तजन मेरे हर्ष की वृद्धि करते हैं। (महा. अनु. प. अ. 145 पृ. 6020)

सभी लोकों में मेरे परम उत्तम सूक्ष्म एवं दिव्य पाशुपत योगशास्त्र का विचार करते हुए वे विचरण करते हैं। इस तरह नित्य मेरे ही चिन्तन में संलग्न रहनेवाले अपने तपस्वी भक्तों के लिये तीनों लोकों में मैंने अपने स्वरूपभूत शिवलिंगों की स्थापना की है जिसकी उपासना से वे शीघ्र ही मुझे प्राप्त हो जाते हैं। (वही अ. 158 पृ. 6070)

इसके बाद नाना प्रकार के द्रव्यों से लिंग की पूजा का फल भगवान् शिव ने बतलाया है। वहाँ पर यह भी बतलाया गया है कि "जो केवल जल से भी मेरे शिवलिंग को नहलाता है, वह भी पुण्य का भागी होता है तथा अभीष्ट फल पा लेता है।"

केवलेनापि तोयेन स्नापयेद् यः शिवं मम।
स चापि लभते पुण्यं प्रियं च लभते नरः।। (महा. अनु. प. अ. 145 पृ. 6020)

भगवान् शिव आगे कहते हैं कि "जो नाना प्रकार के फूलों से मेरे लिंग की पूजा करता है, उसे सहस्त्र धेनुदान का फल प्राप्त होता है। जो देशान्तर में जाकर शिवलिंग की पूजा करता है, उससे बढ़कर समस्त मनुष्यों में मेरा प्रिय करनेवाला दूसरा कोई नहीं है। भाँति-भाँति के द्रव्यों द्वारा जो शिवलिंग की पूजा करता है, वह मनुष्यों में मेरे समान है। वह फिर इस संसार में जन्म नहीं लेता है। अतः भक्त पुरुष अर्चनाओं, नमस्कारों, उपहारों और स्तोत्रों द्वारा प्रतिदिन आलस्य छोड़कर शिवलिंगों के रूप में मेरी पूजा करें। पलाश और बेल के पत्ते, राजवृक्ष के फूलों की मालाएँ तथा आक के पवित्र फूल मुझे विशेष प्रिय हैं। मुझमें मन लगाये रहनेवाले मेरे भक्तों का दिया हुआ फल, फूल, साग अथवा जल भी मुझे विशेष प्रिय लगता है। मेरे संतुष्ट हो जाने पर लोक में कुछ भी दुर्लभ नहीं है; इसलिये

भक्तजन सदा मेरी ही पूजा किया करते हैं। मेरे भक्त कभी नष्ट नहीं होते। उनके सारे पाप दूर हो जाते हैं तथा मेरे भक्त तीनों लोकों में विशेषरूप से पूजनीय हैं। जो मनुष्य मुझसे या मेरे भक्तों से द्वेष करते हैं, वे सौ यज्ञों का अनुष्ठान कर लें तो भी घोर नरक में पड़ते हैं" (महा. अनु. प. अ. 145 पृ. 6020 - 6021)।

पलाशबिल्वपत्राणि राजवृक्षस्त्रजस्तथा।
अर्कपुष्पाणि मेध्यानि मत्प्रियाणि विशेषतः।।
फलं वा यदि वा शाकं पुष्प वा यदि वा जलम्।
दत्तं सम्प्रीणयेद् देवि भक्तैर्मद्व्रतमानसैः।।
ममापि परितुष्टस्य नास्ति लोकेषु दुर्लभम्।
तस्मात् ते सततं भक्ता मामेवाभ्यर्चयन्युत।।
मद्भक्ता न विनश्यन्ति मद्भक्ता वीतकल्मषाः।
मद्भक्ताः सर्वलोकेषु पूजनीया विशेषतः।।
मद्द्वेषिण्श्च ये मर्त्या मद्भक्तेद्वेषिणोऽपि वा।
यान्ति ते नरकं घोरमिष्ट्वा क्रतुशतैरपि।।

(4) शैवतीर्थ

भगवान् की उपासना में तीर्थों का भी बहुत अधिक महत्त्व बताया गया है। भीष्मजी के पूछने पर पुलस्त्यजी तीर्थयात्रा के महत्त्व को बतलाते हुए कहते हैं कि यह बड़ा पवित्र सत्कर्म है। यह यज्ञों से भी बढ़कर है। राजा अथवा समृद्धशाली लोग ही यज्ञों का अनुष्ठान कर सकते हैं। जिनके पास धन की कमी और सहायकों का अभाव है, जो अकेले और साधनशून्य हैं वे तीर्थयात्रारूपी सत्कर्म द्वारा यज्ञों के समान फल को प्राप्त कर सकते हैं।

अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्ट्वा विपुलदक्षिणैः।
न तत् फलमवाप्नोति तीर्थाभिगमनेन यत्।।

अर्थात् - मनुष्य तीर्थयात्रा से जिस फल को पाता है, उसे प्रचुर दक्षिणावाले अग्निष्टोम आदि यज्ञोंद्वारा यजन करके भी नहीं पा सकता। (महा. वनप. 82/19)

युधिष्ठिर के पूछने पर कि सर्वश्रेष्ठ तीर्थ कौन से हैं जहाँ जाने से परम शुद्धि हो जाती है, भीष्मजी कहते हैं कि जिसमें धैर्यरूप कुण्ड और सत्यरूप जल भरा हुआ है तथा जो अगाध, निर्मल एवं अत्यन्त शुद्ध है, उस मानस तीर्थ में सदा परमात्मा का आश्रय लेकर स्नान करना चाहिये। कामना और याचना का अभाव, सरलता, सत्य, मृदुता, अहिंसा, समस्त प्राणियों के प्रति क्रूरता का अभाव - दया, इन्द्रियसंयम और मनोनिग्रह - ये ही इस मानस तीर्थ के सेवन से प्राप्त होनेवाली पवित्रता

के लक्षण हैं। जो ममता, अहंकार, राग-द्वेषादि द्वन्द्व और परिग्रह से रहित एवं भिक्षा से जीवन निर्वाह करते हैं, वे विशुद्ध अन्तःकरणवाले साधु पुरुष तीर्थस्वरूप हैं। किन्तु जिसकी बुद्धि में अहंकार का नाम भी नहीं है, वह तत्त्वज्ञानी पुरुष श्रेष्ठ तीर्थ कहलाता है। भगवान् शिव अथवा नारायण में जो भक्ति होती है, वह भी उत्तम तीर्थ मानी गयी है।(महा. अनु. प. 108/3-6)

भाव यह है कि सद्गुण, संत एवं भगवान् की भक्ति सर्वोत्तम तीर्थ माने गये हैं। आगे भीष्मजी कहते हैं कि-

नोदकक्लिन्नगात्रस्तु स्नात इत्यभिधीयते।
स स्नातो यो दमस्नातः स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः।। (महा. अनु. प. 108/9)

अर्थात्-शरीर को केवल जल से भिगो लेना ही स्नान नहीं कहलाता है। सच्चा स्नान तो उसी ने किया है, जिसने मन-इन्द्रिय के संयमरूपी जल में गोता लगाया है। वही बाहर और भीतर से पवित्र माना गया है।

मानस तीर्थों का वर्णन करने के बाद भीष्मजी ने पृथ्वी पर स्थित पुण्यतीर्थ के महत्त्व को भी बतलाया है। वे कहते हैं कि जैसे शरीर के विभिन्न स्थान पवित्र बताये गये हैं, उसी प्रकार पृथ्वी के भिन्न-भिन्न भाग भी पवित्र तीर्थ हैं और वहाँ का जल पुण्यदायक है। पृथ्वी के कुछ भाग साधु पुरुषों के निवास से तथा स्वयं पृथ्वी और जल के तेज से अत्यन्त पवित्र माने गये हैं, इस प्रकार पार्थिव और मानस अनेक पुण्यमय तीर्थ हैं। जो इन दोनों प्रकार के तीर्थों में स्नान करता है, वह शीघ्र ही परमात्माप्राप्तिरूप सिद्धि प्राप्त कर लेता है।

मनसश्च पृथिव्याश्च पुण्यास्तीर्थास्तथापरे।
उभयोरेव यः स्नायात् स सिद्धिं शीघ्रमाप्नुयात्।। (महा. अनु. प. 108/19)

वे पुनः कहते हैं कि शरीरशुद्धि(जो मानस तीर्थ से प्राप्त होती है) और तीर्थशुद्धि से युक्त पुरुष ही पवित्र होकर परमात्मप्राप्तिरूप सिद्धि प्राप्त करता है। अतः दोनों प्रकार की शुद्धि ही उत्तम मानी गई है।

एवं शरीरशौचेन तीर्थशौचेन चान्वितः।
शुचिः सिद्धिमवाप्नोति द्विविधं शौचमुत्तमम्।। (महा. अनु. प. 108/21)

पार्थिव तीर्थ का फल किसे मिलता है इसकी चर्चा करते हुए एक स्थल पर कहा गया है कि "जिसके हाथ, पैर और मन काबू में हों तथा जो विद्या, तप और कीर्ति से सम्पन्न हो, वही तीर्थ का फल पाता है। जो दम्भ आदि दोषों से दूर, कर्तृत्व के अहंकार से शून्य, अल्पाहारी और जितेन्द्रिय हो, वह सब पापों से विमुक्त हो तीर्थ के वास्तविक फल का भागी होता है। जिसमें क्रोध न हो, जो सत्यवादी और दृढ़तापूर्वक व्रत का पालन करनेवाला हो तथा जो सब प्राणियों के प्रति आत्मभाव रखता हो, वही तीर्थ के फल का भागी होता है" (महा. वनप. 82/9-12)।

कहने का भाव यह है कि मानस तीर्थ में स्नान करनेवाला ही पार्थिव तीर्थ के स्नान का पूरा फल प्राप्त करता है। पुलस्त्यजी भीष्म से कहते हैं कि सम्पूर्ण तीर्थों के दर्शन की इच्छा पूर्ण करने के लिये मनुष्य को जहाँ जाना सम्भव न हो, उन अगम्य तीर्थों में मन से यात्रा करे अर्थात् मन से उन तीर्थों का चिन्तन करे। पुलस्त्यजी भीष्म से आगे कह रहे हैं कि "इसी प्रकार तुम भी विधिपूर्वक शौच-संतोषादि नियमों का पालन करते और पुण्य को बढ़ाते हुए उन तीर्थों की यात्रा करो। ....जो ब्रह्मचर्य आदि व्रतों का पालन नहीं करता, जिसने अपने चित्त को वश में नहीं किया, जो अपवित्र आचार-विचारवाला और चोर है, जिसकी बुद्धि टेढ़ी है, ऐसा मनुष्य श्रद्धा न होने के कारण तीर्थों में स्नान नहीं करता (अर्थात् उसे तीर्थों का फल प्राप्त नहीं होता)।" (महा. वनपर्व 85/105-109)

महाभारत में अनेक पार्थिव शैवतीर्थों के माहात्म्य का उल्लेख है। उदाहरण के लिये महाकालतीर्थ, भद्रवटतीर्थ, सागर एवं सिंधु संगम पर स्थित शंकुकर्णेश्वरतीर्थ, दमीतीर्थ, रुद्रपदतीर्थ, देविकातीर्थ, कामतीर्थ, रुद्रकोटितीर्थ (जहाँ पूर्वकाल में भगवान् शिव ने एक करोड़ मुनियों को एक साथ उपासना के लिये एक करोड़ शिवलिंगों की सृष्टि की थी), सप्तसारस्वततीर्थ (जहाँ मंकणक महर्षि को सिद्धि प्राप्त हुई थी), स्थाणुवटतीर्थ, संनिहतीतीर्थ, सुवर्णतीर्थ (जहाँ पूर्वकाल में भगवान् विष्णु ने रुद्रदेव की प्रसन्नता के लिये उनकी आराधना की और उनसे अनेक देवदुर्लभ वर प्राप्त किये), वाराणसीतीर्थ, गृध्रवटतीर्थ तथा मुंजवटतीर्थ आदि का वर्णन प्राप्त होता है (महा. वनप. अ. 82 से 85)।

उपरोक्त तीर्थों में स्नान, दान, उपवास, भगवान् शिव की पूजा तथा निवास आदि से व्यक्ति सभी पापों से मुक्त होकर भोग एवं मोक्ष का अधिकार प्राप्त कर लेता है तथा अपने मनोवांछित फल भी प्राप्त कर लेता है।

भगवान् शिव एवं विष्णु

जैसा हम देख चुके हैं कि भगवान् शिव ही परम तत्त्व हैं। परम तत्त्व होने के नाते सृष्टि की सभी वस्तुयें उन्हीं से पैदा हुई हैं। सभी देवगण, विष्णु, ब्रह्मा तथा रुद्रदेव की भी उत्पत्ति उन्हीं से हुई है। उनके दाहिने अंग से ब्रह्मा की, बायें अंग से विष्णु की तथा हृदय से रुद्रदेव की सृष्टि हुई है। अत: ये तीनों ही देवता भगवान् शिव के अंग हैं, वे सृष्टि के अन्य जीवों तथा पदार्थों की भाँति विशुद्ध मायारूप न होकर मूलत: परम तत्त्व ही होते हैं परन्तु कार्यभेद से वे अलग-अलग रूप धारण कर लेते हैं। वे माया के अधीन न होकर स्वेच्छा से माया को धारण कर सृष्टिप्रक्रिया में अपनी-अपनी भूमिका निभाते रहते हैं। महाभारत में भी भगवान् शिव एवं विष्णु की एकता का प्रतिपादन किया गया है। एकता के साथ-साथ भगवान् विष्णु एवं शिव के आपसी संबंधों तथा विष्णु की लोकप्रियता आदि के रहस्य का भी खुलासा किया गया है।

महाभारत में अनेक स्थलों पर कहा गया है कि भगवान् शिव ब्रह्मा, विष्णु तथा सम्पूर्ण देवताओं का शरीर धारण करते हैं (महा. अनु. प. 14/140 आदि)। वे एक होकर भी अनेक

रूप धारण करते हैं। वे शरीररहित होकर भी सम्पूर्ण देवताओं के शरीर धारण करते हैं(महा. द्रोणप. 202/105-106)।

ब्रह्मविष्णुसुरेन्द्राणां रुद्रादित्याश्विनामपि।
विश्वेषामपि देवानां वपुर्धारयते भवः।। (महा. अनु. प. 14/140)
धाता च स विधाता च विश्वात्मा विश्वकर्मकृत्।
सर्वासां देवतानां च धारयत्यवपुर्वपुः।। (महा. द्रोणप. 202/105-106)

भीष्म ने भगवान् श्रीकृष्ण के तात्त्विक-स्वरूप की स्तुति करते समय उन्हें रुद्र अथवा शिवस्वरूप माना है। निम्नलिखित उदाहरण देखिये-

शूलिने त्रिदशेशाय त्र्यम्बकाय महात्मने।
भस्मदिग्धाङ्गलिङ्गाय तस्मै रुद्रात्मने नमः।।
चन्द्रार्धकृतशीर्षाय व्यालयज्ञोपवीतिने।
पिनाकशूलहस्ताय तस्मा उग्रात्मने नमः।। (महा. शान्तिप. 47/81-82)

अर्थात्-जो त्रिशूल धारण करनेवाले और देवताओं के स्वामी हैं, जिनके तीन नेत्र हैं, जो महात्मा हैं तथा जिन्होंने अपने शरीर पर विभूति रमा रक्खी है, उन रुद्ररूप परमेश्वर को नमस्कार है। जिनके मस्तक पर अर्धचन्द्र का मुकुट और शरीर पर सर्प का यज्ञोपवीत शोभा दे रहा है, जो अपने हाथ में पिनाक और त्रिशूल धारण करते हैं, उन उग्ररूपधारी भगवान् शंकर को प्रणाम है।

इसी प्रकार अर्जुन ने भगवान् शिव के प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त करने के बाद जो स्तुति की है उसमें उसने उनको विष्णुरूप शिव तथा शिवस्वरूप विष्णु कहा है।

.....शिवाय विष्णुरूपाय विष्णवे शिवरूपिणे।। (महा. वनप. 39/76)

अर्थात्-आप ही विष्णुरूप शिव तथा शिवस्वरूप विष्णु हैं, आपको नमस्कार है। एक अन्य स्थल पर भगवान् शिव की हरिहररूप में वंदना की गयी है। वहाँ कहा गया है कि "आप हरिहररूप होने के कारण आधे शरीर से साँवले और आधे से गोरे हैं। आधे शरीर में पीताम्बर धारण करते हैं और आधे में श्वेत वस्त्र पहनते हैं। आपको नमस्कार है।"

नमः श्यामाय गौराय अर्धपीतार्धपाण्डवे। (महा. अनु. प. 14/298)

उपरोक्त उदाहरणों को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि दोनों देवों-हरि एवं हर में तात्त्विक दृष्टि से एकता है।

अर्जुन को अपने प्रभाव का वर्णन करते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं कि पाण्डुनन्दन! इन भगवान् रुद्र को नारायणस्वरूप ही जानना चाहिये। पार्थ! प्रत्येक युग में उन देवाधिदेव महेश्वर की पूजा करने से सर्वसमर्थ भगवान् नारायण की ही पूजा होती है।

नारायणात्मको ज्ञेयः पाण्डवेय युगे युगे।

तस्मिन् हि पूज्यमाने वै देवदेवे महेश्वरे।।
सम्पूजितो भवेत् पार्थ देवो नारायणः प्रभुः। (महा. शा. प. 341/22-23)

वे आगे कहते हैं कि कुन्तिनन्दन! रुद्र और नारायण दोनों एक ही स्वरूप हैं, जो दो स्वरूप धारण करके भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में स्थित हो संसार में यज्ञ आदि सब कर्मों में प्रवृत्त होते हैं।

रुद्रो नारायणश्चैव सत्त्वमेकं द्विधाकृतम्।
लोके चरति कौन्तेय व्यक्तिस्थं सर्वकर्मसु।। (महा. शा. प. 341/27)

किसी अन्य प्रसंग में श्रीहरि रुद्रदेव से कहते हैं कि "प्रभो! जो तुम्हें जानता है वह मुझे भी जानता है। जो तुम्हारा अनुगामी है, वह मेरा भी अनुगामी है। हम दोनों में कुछ भी अन्तर नहीं है।"

यस्त्वां वेत्ति स मां वेत्ति यस्त्वामनु स मामनु।
नावयोरन्तरं किंचिन्मा .....।। (महा. शा. प. 342/133)

उपरोक्त उद्धरणों में भी शिव एवं रुद्रदेव के बीच अभिन्नता का प्रतिपादन किया गया है। अब हम इन दोनों के आपसी संबंधों तथा विष्णुजी की लोकप्रियता के कारणों पर विचार करेंगे।

पुत्रप्राप्ति के वर के लिये श्रीकृष्ण ने भगवान् शिव को प्रसन्न करने हेतु कठोर तप किया। परिणामतः भगवान् शिव उनके समक्ष प्रकट हो इस प्रकार बोले- "तीनों लोकों में तुम्हारे समान दूसरा कोई मुझे प्रिय नहीं है।"

त्वत्समो नास्ति मे कश्चित् त्रिषु लोकेषु वै प्रियः। (महा. अनु. प. 14/406)

एक अन्य स्थल पर भगवान् शिव कहते हैं कि "अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीकृष्ण ने सत्य, शौच, सरलता, त्याग, तपस्या, नियम, क्षमा, भक्ति, धैर्य, बुद्धि और वाणी के द्वारा मेरी यथोचित आराधना की है; अतः कृष्ण से बढ़कर दूसरा कोई मुझे परम प्रिय नहीं है।"

सत्यशौचार्जवत्यागैस्तपसा नियमेन च।
क्षान्त्या भक्त्या च धृत्या च बुद्ध्या च वचसा तथा।।
यथावदहमाराद्धः कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा।
तस्मादिष्टतमः कृष्णादन्यो मम न विद्यते।। (महा. सौप्तिकप. 7/62-63)

स्वयं भगवान् विष्णु या उनके अन्य अवतारों के शिव उपासना संबंधी कई सन्दर्भ महाभारत में पाये जाते हैं। भगवान् विष्णु ने सुदर्शनचक्र की प्राप्ति के लिये तथा कृष्ण ने पुत्रादि की प्राप्ति के लिये तथा नारायण ने ऐश्वर्य आदि की प्राप्ति के लिये शिवोपासना की थी। इन लोगों ने शिवोपासना से अनेक दुर्लभ वरों की प्राप्ति की थी।

सुवर्णतीर्थ में भगवान् विष्णु ने रुद्रदेव की प्रसन्नता के लिये उनकी आराधना की थी। आराधना से संतुष्ट हो शिवजी ने विष्णु से कहा था "श्रीकृष्ण! तुम मुझे लोक में अत्यन्त प्रिय होओगे। संसार में सर्वत्र तुम्हारी ही प्रधानता होगी, इसमें संशय नहीं है।"

उक्तश्च त्रिपुरघ्नेन परितुष्टेन भारत।
अपि च त्वं प्रियतरो लोके कृष्ण भविष्यसि।।
त्वन्मुखं च जगत् सर्वं भविष्यति न संशयः। (महा. वनप. 84/20-21)

एक स्थल पर व्यासजी श्रीकृष्ण की महिमा बताते हुए कहते हैं कि ये श्रीकृष्ण भगवान् शंकर के भक्त हैं और उन्हीं से प्रकट हुए हैं(महा. द्रोणप. 201/95)। उन्होंने पहले(अपने नारायणावतार में) ही भगवान् शंकर से अनेक वरदान पा रखा है। नारायणावतार में भगवान् शिव ने उन्हें इस प्रकार वर दिया था- "तुम मेरे कृपा-प्रसाद से मनुष्यों, देवताओं तथा गन्धर्वों में भी असीम बल-पराक्रम से सम्पन्न होओगे। देवता, असुर, सर्प, पिशाच, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सुपर्ण, नाग तथा समस्त पशुयोनि के प्राणी भी तुम्हारा वेग नहीं सह सकेंगे। युद्धस्थल में कोई देवता भी तुम्हें जीत नहीं सकेगा। शस्त्र, वज्र, अग्नि, वायु, गीले-सूखे पदार्थ और स्थावर एवं जंगम के द्वारा भी कोई मेरी कृपा से किसी प्रकार तुम्हें चोट नहीं पहुँचा सकता।"(महा. द्रोणप. 201/80-83)

मत्प्रसादान्मनुष्येषु देवगन्धर्वयोनिषु।
अप्रमेयबलात्मा त्वं नारायण भविष्यसि।।
न च त्वां प्रसहिष्यन्ति देवासुरमहोरगाः।
न पिशाचा न गन्धर्वा न यक्षा न च राक्षसाः।।
न सुपर्णास्तथा नागा न च विश्वे वियोनिजाः।
न कश्चित् त्वां च देवोऽपि समरेषु विजेष्यति।।
न शस्त्रेण न वज्रेण नाग्निना व च वायुना।
न चार्देण न शुष्केण त्रसेन स्थावरेण च।।
कश्चित् तव रुजां कर्ता मत्प्रसादात् कथंचन। (महा. द्रोणप. 201/80-84)

वे आगे कहते हैं कि "तुम समरभूमि में पहुँचने पर मुझसे भी अधिक बलवान् हो जाओगे।"

अपि वै समरं गत्वा भविष्यसि ममाधिकः।। (महा. द्रोणप. 201/84)

महाभारत में इस प्रश्न का भी समाधान मिल जाता है कि भगवान् विष्णु जब तात्त्विकरूप से या आत्मरूप से भगवान् शिव से अभिन्न हैं(अर्थात् वे दोनों एक समान हैं) तथा उनके संकल्पमात्र से ही उनकी इच्छायें पूरी हो सकती हैं, तो वे भगवान् शिव की अर्चना क्यों करते हैं?

उपरोक्त प्रश्न का समाधान श्रीकृष्ण का अर्जुन को दिये एक वक्तव्य में प्राप्त होता है। वे वहाँ कहते हैं कि "पाण्डुकुमार! मैं सम्पूर्ण जगत् का आत्मा हूँ। इसलिये मैं पहले अपने आत्मारूप रुद्र की ही पूजा करता हूँ। यदि मैं वरदाता भगवान् शिव की पूजा न करूँ तो दूसरा कोई भी उन आत्मरूप शंकर का पूजन नहीं करेगा, ऐसी मेरी धारणा है। मेरे किये हुए कार्य को प्रमाण या आदर्श मानकर सब लोग उसका अनुसरण करते हैं। जिनकी पूजनीयता वेद-शास्त्रों द्वारा प्रमाणित है, उन्हीं देवताओं की

पूजा करनी चाहिये। ऐसा सोचकर ही मैं रुद्रदेव की पूजा करता हूँ। जो रुद्र को जानता है, वह मुझे जानता है। जो उनका अनुगामी है, वह मेरा भी अनुगामी है(अर्थात् रुद्र एवं नारायण दोनों का एक ही स्वरूप है)। पाण्डवों को आनंदित करनेवाले अर्जुन! मुझे दूसरा कोई वर नहीं दे सकता; यही सोचकर मैंने पुत्र-प्राप्ति के लिये स्वयं ही अपने आत्मस्वरूप पुराणपुरुष जगदीश्वर रुद्र की आराधना की थी। विष्णु अपने आत्मस्वरूप रुद्र के सिवा किसी दूसरे देवता को प्रणाम नहीं करते; इसलिये मैं रुद्र का भजन करता हूँ।"

अहमात्मा हि लोकानां विश्वेषां पाण्डुनन्दन।।
तस्मादात्मानमेवाग्रे रुद्रं सम्पूजयाम्यहम्।
यद्यहं नार्चयेयं वै ईशानं वरदं शिवम्।।
आत्मानं नार्चयेत् कश्चिदिति मे भावितात्मनः।
मया प्रमाणं हि कृतं लोकः समनुवर्तते।।
प्रमाणानि हि पूज्यानि ततस्तं पूजयाम्यहम्।
यस्तं वेत्ति स मां वेत्ति योऽनु तं स हि मामनु।।
न हि मे केनचिद् देयो वरः पाण्डवनन्दन।
इति संचिन्त्य मनसा पुराणं रुद्रमीश्वरम्।।
पुत्रार्थमाराधितवानहमात्मानमात्मना।
न हि विष्णुः प्रणमति कस्मैचिद् विबुधाय च।।
ऋते आत्मानमेवेति ततो रुद्रं भजाम्यहम्। (महा. शा. प. 341/23-26, 28-30)

उपसंहार

लगभग एकलाख श्लोकोंवाले विशालकाय ग्रन्थ महाभारत में शिवतत्त्व का बहुत ही विस्तार से अलग-अलग संदर्भों में विवेचन प्राप्त होता है। भगवान् शिव के प्रचलित तथा जो अन्य ग्रन्थों में सामान्यतः पाये जाते हैं वे सभी विशेषण हमें महाभारत में प्राप्त होते हैं। उन्हें यहाँ भी परब्रह्म के रूप में माना गया है। वे ही सगुणरूप धारणकर ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि देवताओं तथा सम्पूर्ण चराचर की सृष्टि करते हैं। सगुणरूप में वे पाँच मुखवाले, गंगा एवं चन्द्रमा को धारण करनेवाले, जटा-जूटधारी, नागों की माला तथा व्याघ्रचर्मधारी, रुद्राक्ष एवं भस्मधारी, मुण्डमाला, त्रिशूल तथा पिनाकधारी, कैलासवासी, जगत् की सृष्टि, पालन एवं संहार करनेवाले, वरदाता, दुःखों को दूर करनेवाले, विश्वरूप, मोक्ष एवं भोग प्रदान करनेवाले, असुरों का विनाश करनेवाले, नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र धारण करनेवाले, सभी प्रकार की विद्याओं तथा कलाओं के स्वामी, अजन्मा, अविनाशी, गौरवर्ण, सहस्त्र नेत्रों, कानों तथा पैरों आदि से युक्त, दक्ष-यज्ञ विनाशक, त्रिपुरारि, कालस्वरूप, हरिहर एवं अर्धनारीश्वररूप, परमधाम, विश्वात्मा, शुद्धात्मा, मायाधीश तथा ईश्वर आदि हैं।

निर्गुणरूप में वे निराकार परम ब्रह्म, देश-कालातीत, अविकारी, अनुपम, ध्रुव, अप्रमेय, मन-वाणी तथा बुद्धि से परे, सच्चिदानन्दस्वरूप, माया से परे, अद्वैत, शुद्ध, स्वयंभू, सनातन, निष्कल, ॐकार तथा विशुद्ध ज्ञानस्वरूप हैं।

भगवान् शिव सभी प्रकार के सुख, भोग, स्वर्ग, मोक्ष तथा कर्मफल के दाता तथा सभी कामनाओं को पूरा करनेवाले हैं। वे शीघ्र प्रसन्न होनेवाले हैं तथा प्रसन्न होनेपर वे भक्तों को त्रैलोक्य की सभी वस्तुएँ तथा अमरत्वतक प्रदान कर देते हैं। इनकी उपासना से सुर, असुर, देव, मानव, नाग, किन्नर, गन्धर्व आदि सभी कोटि के प्राणियों ने अपना मनोवांछित फल पाया है। उदाहरण के लिये विष्णु को चक्र सुदर्शन, श्रीकृष्ण को पुत्र, लवणासुर को अमोघ त्रिशूल, परशुराम को दिव्य अस्त्र-शस्त्र, कपिल को सांख्य-शास्त्र, व्यासजी को पुत्र, विश्वामित्र को ब्राह्मणत्व, जैगीषव्य को योग की सिद्धियाँ, गर्ग को चौंसठ कलाओं का ज्ञान, बाल्मीकि को ब्रह्महत्या आदि से मुक्ति, अनसूया को पुत्र की प्राप्ति भगवान् शिव की उपासना से ही हुई।

भगवान् शिव की सगुणोपासना में उनके विग्रह की अपेक्षा लिंग की पूजा को श्रेष्ठ बताया गया है। अश्वत्थामा का अग्नेयास्त्र अर्जुन एवं श्रीकृष्ण का कुछ भी बिगाड़ न सका तो इसके कारण को समझाते हुए व्यासजी कहते हैं कि कृष्ण एवं अर्जुन ने शिवलिंग की पूजा की है जबकि (अश्वत्थामा) तुमने उनके प्रतिमा की। लिंगपूजा से भगवान् शिव ज्यादा प्रसन्न होते हैं। इसी कारण से प्रतिमापूजक अश्वत्थामा का शस्त्र लिंगपूजक अर्जुन-श्रीकृष्ण का कुछ न बिगाड़ सका।

पाशुपतयोग की चर्चा में बताया गया है कि पाशुपतव्रतधारी को संपूर्ण अंगो में भस्म धारण कर ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये। उसे जटाधारण करना चाहिये अथवा मुण्डित केश होना चाहिये अथवा नाना प्रकार की शिखा धारण करना चाहिये। नग्नवेश धारणकर निःस्पृह और परिग्रहशून्य हो शिवजी में मन-बुद्धि लगाकर मिट्टी का पात्र लेकर भिक्षाटन करना चाहिये। तथा शिवलिंग की विधिवत् उपासना करनी चाहिये। शिवलिंग की विविध प्रकार की सामग्री से पूजा करने से प्राप्त फलों की भी चर्चा महाभारत में की गयी है। उदाहरण के लिये जो नाना प्रकार के फूलों से लिंगपूजा करता है उसे हजार गौवों के दान का फल मिलता है। भगवान् शिव को पलाश एवं बेल के पत्ते तथा आक के फूल विशेष प्रिय हैं।

महाभारत में तीर्थों की चर्चा करते हुए कहा गया है कि मानसतीर्थ सर्वश्रेष्ठ हैं। मानसतीर्थ शम-दमादि सद्गुणों को कहते हैं। पार्थिवतीर्थों के प्रसंग में कहा गया है कि जैसे शरीर के विभिन्न स्थान(अंग) पवित्र बतलाये गये हैं, उसी प्रकार पृथ्वी के भिन्न-भिन्न भाग भी पवित्र तीर्थ हैं और वहाँ का जल पुण्यदायक है। पृथ्वी के कुछ भाग साधु-पुरुषों के निवास से तथा स्वयं पृथ्वी और जल के तेज से अत्यन्त पवित्र माने गये हैं। इस प्रकार पार्थिव और मानस अनेक पुण्यमय तीर्थ हैं। जो इन दोनों प्रकार के तीर्थों में स्नान करता है उसे शीघ्र ही ईश्वर की प्राप्ति हो जाती है। शैव-पार्थिव-तीर्थों में महाकाल, वाराणसी, सन्निहती, स्थाणुवट आदि का वर्णन महाभारत में पाया जाता है।

महाभारत में हम अन्य ग्रन्थों की भाँति विष्णु एवं शिव के एकात्म होने का उल्लेख पाते हैं।

ये दोनों ही देव तात्त्विक दृष्टि से एक हैं। फिर भी विष्णुजी या श्रीकृष्ण को शिव की उपासना करते हुए दिखाया गया है। भगवान् शिव को श्रीकृष्ण अत्यन्त प्रिय हैं क्योंकि वे शिव के आत्मरूप हैं। वे शिव से ही उत्पन्न हुए हैं, और वे उन्हीं के भक्त हैं। अत: शिव की उपासना से श्रीकृष्ण की भी पूजा हो जाती है।

पुन: श्रीकृष्ण शिव-पूजा क्यों करते हैं इसका कारण बताते हुए वे कहते हैं कि मैं अगर शिव की पूजा नहीं करूँ तो लोग मेरे व्यवहार को प्रमाण मानकर शिव की पूजा नहीं करेंगे। अत: लोक-आदर्श की स्थापना के लिये ही ऐसा करता हूँ।

लोक में भगवान् विष्णु की व्यापक प्रियता का भी रहस्य महाभारत में बताया गया है। भगवान् विष्णु को भगवान् शिव ने पूर्वकाल में ही अनेकों दुर्लभ वर दिये हैं जिनमें उनकी लोकप्रियता, युद्ध-अजेयता तथा संग्राम में शिव से भी अधिक बल सम्पन्नता शामिल हैं।

s s s s s s s s

सत्संग की महिमा

देहधारियों का यह देह क्षणभंगुर है, इसमें मनुष्यशरीर मिलना बड़ा दुर्लभ है, उसमें भी भगवान् के प्रेमी भक्तों का दर्शन तो और भी दुर्लभ है। इस संसार में यदि क्षणभर के लिये भी सत्संग मिल जाय तो वह मनुष्यों के लिये निधि का काम देता है; क्योंकि उससे चारों पुरूषार्थ प्राप्त हो जाते हैं।

दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभङ्गुरः।।
तत्रापिदुर्लभं मन्ये वैकुण्ठप्रियदर्शनम्।
संसारेऽस्मिन् क्षणार्द्धोऽपि सत्सङ्गः शेवधिर्नृणाम्।।
यस्मादवाप्यते सर्वं पुरुषार्थचतुष्टयम्। (पद्मपुराण. पातालखण्ड 84/23-25)

जो मनुष्य सदा गंगा आदि सम्पूर्ण तीर्थों में स्नान करता है तथा जो केवल साधुपुरुषों का संग करता है, उनमें साधुसंग (सत्संग) करनेवाला पुरुष श्रेष्ठ है।

जैसे सुवर्ण अग्नि के संपर्क में आनेपर मैल त्याग देता है, उसी प्रकार मनुष्य संतों के संग से पाप का परित्याग कर देता है।

गङ्गादिपुण्यतीर्थेषु यो नरः स्नाति सर्वदा।
यः करोति सतां सङ्गं तयोः सत्सङ्गमो वरः।। (पद्मपुराण. पातालखण्ड 98/78)
यथा वह्निप्रसङ्गाच्च मलं त्यजति काञ्चनम्।
तथा सतां हि संर्सगात् पापं त्यजति मानवः। (पद्मपुराण. भूमिखण्ड 33/21)